भारतीय संस्कृति में नैतिक मूल्यों की स्थितिः एक विवेचन

नेहा रानी

शोध छात्रा, दर्षनषास्त्र विभाग, बी0 आर0 ए0 बी0 यू0, मुजफ्फरपुर, (बिहार) भारत

सार संक्षेप

समाज में व्यक्ति दो ही चीजों से पहचाना जाता है, एक तो ज्ञान और दूसरा उसका नैतिक व्यवहार। व्यक्ति के सर्वांगिण विकास के लिए दोनों बेहद जरूरी होता है। ज्ञान को सफलता की चाबी कहा जाता है, तो नैतिकता सफलता की सीढ़ी। मनुष्य के जीवन में नैतिक मूल्य ही ऐसी अवधारणाएँ है, जो नैतिकता के मूल्यांकन के मुख्य आधार होते है। जिनकी सहायता से मुनष्य शुभ–अशुभ, अच्छा–बुरा, नैतिक–अनैतिक तथा सत्य–असत्य आदि में भेद करता है। भारतीय संस्कृति में दर्शन, धर्म तथा नीति से संबंधित विभिन्न विचारधाराओं का विकास सूत्र काल में हुआ। इस काल में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा तथा वेदांत जैसे प्रमुख दर्शनों का भी विकास हुआ। इस काल में श्रेष्ठ नैतिक मूल्यों की भी स्थापना हुई परन्तु उन सभी पर वेद, उपनिषद् व गीता का स्पष्ट प्रभाव था। आज भारतीय संस्कृति में नैतिक और मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है। इसका कारण है लोग दूसरे संस्कृतियों से समागम के वक्त अपने मौलिक सांस्कृतिक मूल्यो के बजाय अन्य संस्कृतियों के खराब मूल्यों और परंपराओं से शीघ्र प्रभावित होते है।

मुख्य शब्दः– नीतिशास्त्र, दर्शन, नैतिकता, समाज, आचरण, ज्ञान

नीतिशास्त्र (Ethics) जिसे व्यवहारदर्षन, नीतिदर्शन, नीतिविज्ञान और आचारषास्त्र भी कहते है, दर्षन की एक शाखा है, जिसमें उन सामान्य सिद्धान्तों का विवेचन होता है जिनके आधार पर मानवीय क्रियाओं और उद्येष्यों का मूल्यांकन संभव हो सके। अच्छा और बुरा, सही और गलत, गुण और दोष, न्याय और जुर्म जैसी अवधारणाओं को परिभाषित करके, नीतिषास्त्र मानवीय नैतिकता के प्रश्नों को सुलझाने का प्रयास करता है। इसतरह नीतिशास्त्र समाज में रहनेवाले मनुष्यों के आचरण का आदर्शमूलक विज्ञान है।

समाज में व्यक्ति दो ही चीजों से पहचाना जाता है, एक तो ज्ञान और दूसरा उसका नैतिक व्यवहार। व्यक्ति के सर्वांगिण विकास के लिए दोनों बेहद जरूरी होता है। ज्ञान को सफलता की चाबी कहा जाता है, तो नैतिकता सफलता की सीढ़ी। एक के अभाव में दूसरे का विनाश हो जाता है। नैतिकता हमारे निश्चय को दृढ़ और समझ को प्रखर बनाती है। यदि हम नैतिकता के इतिहास पर विचार करे तो यह ज्ञात होता है कि मनुष्य के सामाजिक जीवन के साथ ही किसी न किसी रूप में इसका भी जन्म हुआ। जब से आदमी एक–दूसरे के साथ मिलकर समाज का

निर्माण किया और उसमें रहकर दूसरों के सहयोग से अपनी समस्याओं का समाधान खोजने लगा, तभी से उसे कुछ नियमों की आवश्यकता हुई, जो उसकी तथा दूसरों की इच्छाओं, आवश्यकताओं, उद्देश्यों, स्वार्थो आदि को नियंत्रित रख सके। साथ ही जिनका पालन कर वह दूसरों के साथ सुखपूर्वक रहते हुये सामंजस्यपूर्ण सामाजिक जीवन व्यतीत कर सके। धीरे–धीरे ये नियम सामाजिक परंपराओं और रीति–रिवाजों का रूप ग्रहण कर लिया और जिनका पालन करना समाज के हर सदस्य के लिए अनिवार्य बन गया। इस तरह सामाजिक परम्परओं और रीति–रिवाजों से ही नैतिकता का जन्म हुआ। इसी तरह मानवीय आवधारणाओं के विकास की सामाजिक, ऐतिहासिक, परिस्थितियों में मूल्यों की अवधारणा का भी विकास हुआ। समाज में कुछ ऐसे पूर्व निर्धारित मूल्य, मानदंड, परम्परा और आदर्श होते है, जिनकी सीमा के अंदर रहकर ही व्यवहार करना होता है। जो ऐसा करता है उसका व्यवहार आदर्श व्यवहार कहलाता है। सामाजिक मानदण्डों के आधार पर ही समाज, व्यक्ति के व्यवहार का मूल्यांकन करता है। हम भारतीयों की सामाजिक व्यवस्था। ''सर्वेजन हिताय, सर्वजन सुखाय ओर सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामय'' पर आधारित है। यह व्यवस्था सभी को जीने, सुरक्षित रहने और आगे बढ़ने का समान अवसर देती है। समाज के माध्यम से ही मानव नैतिक आदर्षो को प्राप्त करता है। नैतिकता, सामाजिक जीवन को सरल बनाती है।

मनुष्य के जीवन में नैतिक मूल्य ही ऐसी अवधारणाएँ है, जो नैतिकता के मूल्यांकन के मुख्य आधार होते है। जिनकी सहायता से मुनष्य शुभ–अषुभ, अच्छा–बुरा, नैतिक–अनैतिक तथा सत्य–असत्य आदि में भेद करता है। यदि भारत के इतिहास और संस्कृति पर गौर फरमाए तो पता चलता है कि भारत के आधुनिक समाज कि अपेक्षा वैदिक संस्कृति और श्रमण संस्कृति में लागों के नैतिक मूल्यों का ज्ञान, आस्था, मान्यता और उनके अनुशीलन की गति सकारात्मक थी, जिसके चलते आज भी भारतीय संस्कृति विश्व में सम्माननीय और प्रशंसनीय है। प्रारम्भ में भारतीय संस्कृति में नैतिकता एवं नैतिक मूल्य व्यवस्थित नियम के रूप में प्रचलित नहीं थे। नैतिकता और नैतिक मूल्यों को निर्धारण मनुष्य के सामान्य व्यवहार, धार्मिक रीति–रिवाजों तथा उनके क्रियाकलापों के माध्यम से होता था। प्राचीन भारत में वैदिक, हिन्दु, जैन, तथा बौद्ध धर्मो द्वारा प्रतिपादित नैतिक नियम एवं उनके मूल्यों का विस्तृत वर्णन इन धर्म के ग्रन्थों में मिलता है।

मनुस्मृति में नैतिक मूल्यों के रूप में धर्म के 10 लक्षण बतलाये गये है।–

''धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।

धीः विद्या सत्यमक्रोधो दषकं धर्म लक्षणम्।।''

इनका अनुशीलन कर मनुष्य सुख एवं शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए सर्वोच्च शुभ को प्राप्त करता है। स्वार्थ, संघर्ष और कलहपूर्ण स्थिति से बचने के

लिए तथा शान्तिमय जीवन व्यतीत करने हेतु वैदिक ऋषियों ने ''वसुधैव कुटुम्बकम'' के मूल्य की परिकल्पना की। इस प्रकार की परिकल्पना सिर्फ हमारे भारतीय संस्कृति में ही है, जहाँ पूरे विश्व को अपना परिवार समझा जाता है। यद्यपि वैदिक काल में जहाँ एक ओर श्रेष्ठ नैतिक मूल्यों की स्थापना हुई तो वहीं दूसरी ओर वर्णव्यवस्था, यज्ञों के प्रचलन तथा कर्मकाण्डों के कारण दोषपूर्ण अमानवीय परंपराओं की भी शुरूआत हो गयी थी जिनके कारण समाज में हिंसा, असमानता, शोषण, उत्पीड़न और अन्याय का बोलबाला हो गया जिसके फलस्वरूप नैतिक मूल्यों में गिरावट आ गई। अतः वेदों के युग की अवस्था को समाप्त करने की आवश्यकता हुई। इसके लिए ब्रह्म और आत्मा की परिकल्पना की गई। जब जगत में सबकुछ ब्रह्ममय एवं मनुष्य ब्रह्म का अंष है; यदि ऐसा भाव मनुष्य में पैदा हो जाए तो सभी प्रकार शोषण, उत्पीड़पन, भेदभाव, अन्याय के समाप्त होने के साथ–साथ सभी प्रकार के दुखः खुद समाप्त हो जायेगें। इस प्रकार अहिंसा के सिद्धांत का प्रयोग ऐतिहासिक भारत में सर्वप्रथम उपनिषदों के ऋषियों द्वारा वैदिक यज्ञों की क्रूरता को कम करने के संबंध में किया गया। अहिंसा आज भी मानव समाज के लिए श्रेष्ठ नैतिक मूल्य है।

वैदिक संस्कृति में गीता एक महत्वपूर्ण धर्म ग्रन्थ है। गीता के अनुसार आत्मज्ञान और निष्काम कर्मयोग द्वारा व्यक्ति सारे दुःखों से निवृत होकर मोक्ष को पा सकता है। आत्मज्ञान के बारे में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है– ''जो इस आत्मा को मारनेवाला समझता है और जो इसको मरा मानता है और दोनो ही नहीं जानते, क्योंकि यह आत्मा न मरता है और न मारा जाता है। '' जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र त्यागकर नये वस्त्र धारण करता है ठीक वैसे ही आत्मा पुराने शरीर को त्यागकर नये शरीर को धारण करता है। गीता के 5वें अध्याय में दुःखों की निवृति के लिए निष्काम कर्मयोग के नैतिक मूल्य का प्रावधान है। कर्म के सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है हे अर्जुन तेरा कर्म में अधिकार है फल में नहीं।' इस प्रकार उपनिषद् और भगवद्गीता द्वारा प्रतिपादित नैतिक मूल्य विषुद्ध रूप से आध्यात्मिक है, जिनका ज्ञान और अनुशीलन करने से मनुष्य का कल्याण संभव हो सकता है।

भारतीय संस्कृति में दर्शन, धर्म तथा नीति से संबंधित विभिन्न विचारधाराओं का विकास सूत्र काल में हुआ। इस काल में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा तथा वेदांत जैसे प्रमुख दर्शनों का भी विकास हुआ। इस काल में श्रेष्ठ नैतिक मूल्यों की भी स्थापना हुई परन्तु उन सभी पर वेद, उपनिषद् व गीता का स्पष्ट प्रभाव था। वैदिक संस्कृति में जितना मूल्यों के सृजन पर चिंतन– मनन किया गया था। मानव कल्याण हेतु आगे उतना नहीं किया गया। परिणास्वरूप वेदों के युग से चली आ रही कर्मकाण्डों, यज्ञों, अंधविष्वासों और वर्णभेदों जैसी परम्पराओं पर कोई अंकुश नहीं लग पाया। अतः उपनिषद् के युग से

ही मानव कल्याण तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना को लेकर एक नई संस्कृति का आरंभ हो गया था, जो आगे चलकर श्रमण संस्कृति के नाम से जानी जाती है। इस संस्कृति में महावीर व बुद्ध का महत्वपूर्ण योगदान रहा था।

श्रमण संस्कृति के अन्तर्गत महावीर और बुद्ध के साथ–साथ कुल त्रिशइ श्रमण संघ थे। ये सभी वैदिक संस्कृति में प्रचलित यज्ञ–याज्ञों, कर्मकाण्डों, अंधविश्वासों और वर्णभेद के प्रबल विरोधी थे। श्रमण संस्कृति के प्रथम महत्वपूर्ण स्तम्भ महावीर स्वामी थे। इनका जन्म 599 ई0 पू0 में हुआ था। इन्होंने जैन धर्म में श्रेष्ठ नैतिक मूल्यों का प्रावधान किया है। महावीर ने अपने षिष्य गौतम स्वामी को उपदेश देते हुए कहा है कि हे गौतम कषाय चार है–क्रोध, मान, माया और लाभ। ये मनुष्य के पतन में सहायक सिद्ध होते हैं। मनुष्य में पाँच प्रकार के नैतिक मूल्यों का प्रावधान किया है– अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इनका अनुशीलन कर मनुष्य अपना एवं समाज का कल्याण कर सकता है। इसी प्रकार जैन परम्परा में श्रमण बनने के लिए सात प्रकार के दुर्व्यसनों का त्याग करना आवश्यक बताया गया है, जैसे– जुआ खेलना, मांसाहार, मदिरापान, वेष्यावृति, षिकार, चोरी, तथा परस्त्रीगतमन्। जैन परंपरा में विश्वास है कि मनुष्य इन नैतिक मूल्यों का अनुशीलन कर अपने जीवन में अंततः महतम कल्याण की स्थिति को प्राप्त कर सकता है।

श्रमण संस्कृति के दूसरे महत्वपूर्ण स्तम्भ बुद्ध थे। बुद्ध ने वैदिक संस्कृति में प्रचलित पाखंडो, अंधविश्वास, कर्मकाण्डों, वर्णव्यवस्था की आलोचना कर अपने धर्म और नीतिशास्त्रीय नियमों के अनुसार चार आर्य सत्यों की महान अवधारणा प्रतिपादित किया तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना हेतु वृहत कुषलकर्मो की सूची बनायी जिनका विवरण त्रिपिटकों तथा धम्मपद में हमें मिलता है। संक्षेप में, बुद्ध ने पंचशील सत्य, अहिंसा, अचार्य, ब्रह्मचार्य तथा नशावर्जन एवं चार ब्रह्मविचार–मैत्री, करूणा, मुदिता तथा उपेक्षा और कुशल कर्म माता– पिता की सेवा करना, आचार्य की सेवा, मित्रों की सेवा, सवेक–स्वामी का कर्त्तव्य, श्रमणों की सेवा में मध्यम मार्ग के सिद्धांतों की स्थापना कर श्रेष्ठ नैतिक मूल्यों की स्थापना की थी। इस प्रकार हम देखते है कि बुद्ध द्वारा प्रतिवेदित सम्पूर्ण नैतिक एवं मानवीय मूल्यों पर ही आधारित था।

निष्कर्ष–

आज भारत में नैतिक मूल्यों की स्थिति अत्यंत खराब एवं सोचनीय है, क्योंकि विशुद्ध संस्कृति का अभाव है।

भारत में वर्तमान समय में जो संस्कृति प्रवाहमान है वह विशुद्ध न होकर एक संस्कार संस्कृति के रूप में है। यद्दपि वर्तमान भारतीय संस्कृति पर वैदिक संस्कृति, श्रमण संस्कृति, युनानी, इस्लाम, और आंग्ल संस्कृतियों का स्पष्ट, प्रत्यक्ष एवं सीधा प्रभाव दिखाई पड़ता है। आज भारतीय संस्कृति में नैतिक और मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है। इसका कारण है लोग दूसरे संस्कृतियों से समागम के

वक्त अपने मौलिक सांस्कृतिक मूल्यो के बजाय अन्य संस्कृतियों के खराब मूल्यों और परंपराओं से शीघ्र प्रभावित होते है। इसी कारण आज वैदिक एंव श्रमण संस्कृति के द्वारा प्रतिपादित नैतिक एवं मानवीय मूल्य केवल धर्मशास्त्र व नीतिशास्त्र के ग्रन्थों की शोभा बढ़ा रहे है। लेकिन व्यवहार में इनका प्रभाव कम होता जा रहा है, जो चिंता का विषय है।

संदर्भ–सूचीः–

1. मिश्र प्रो0 नित्यानंदः नीतिशास्त्र (सिद्धांत एवं प्रयोग)
2. चौरसिया, डॉ0 एम0 पी0ः अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र
3. जे0 एन0 सिन्हा, नीतिशास्त्र
4. डॉ0 डी0 पाठक, भारतीय नीतिशास्त्र
5. भारतीय दर्षन, मा0 डा0 उमेश मिश्र
6. मिश्र, डॉ0 हृदयनारायणः नीतिशास्त्र (सिद्धांत एवं प्रयोग) महानारायणोपनिषद्
7. मनुस्मृति–92/6 अनु0, हरिशचंद्र विधालंकार, वैदिक धर्मशास्त्र प्रकाश संस्था, दिल्ली, सं. 2016
8. गीता गीत प्रेस, गोरखपुर
9. मत्स्य पुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, सांतवां संस्करण